© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 02 | January – March 2018

वेद में कृषि का स्वरूप

हेमन्त शर्मा, शोधार्थी संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।

ISSN : 2348-5612 © URR

शोध–सार : प्रस्तुत शोध पत्र में वेद में कृषि के स्वरूप पर विवेचन किया गया है। शोध पत्र के माध्यम से यह बताया गया है कि कृषि करने की परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद में कृषि से संबंधित अनेक मन्त्र देखने को मिलते हैं। जिसमें कृषि व कृषि करने वाले किसान को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा गया है।

मुख्य बिन्दु : मधुमान्नो, कृषिश्चमे, द्रविणोदा, एक चमसं, सुक्षेत्र।

भूमिका : कृषि शब्द की उत्पत्ति कृष् में इक् प्रत्यय लगने से हुई है।[1] जिसका अर्थ हल चलाना, खेती करना या काश्तकारी होता है। वैदिक संहिताओं का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चारों वेदों में जिस प्रकार यज्ञ की महिमा वर्णित है और उस आधार पर वैदिक संस्कृति को यज्ञ संस्कृति कहा जाता है, उसी प्रकार कृषि कर्म की व्यापक महत्ता को देखकर वेदों की संस्कृति को कृषि संस्कृति कह दे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि कृषि का अर्थ केवल भूमि विलेखन नहीं, बल्कि पशुपालन आदि सब इसमें समाहित हो जाता है।

वैदिक संस्कृति कृषि संस्कृति है। अतः सहिता काल तक आर्यों ने संस्कृति कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करना आरम्भ कर दिया था। ऋग्वेद में ऐसा वर्णन मिलता है जहां पर एक ऋषि घूतकर को जुआ खेलना छोड़कर कृषि करने का उपदेश देता है।[2] यजुर्वेद में भी कृषि के विषय में कहा गया है कि कृषि की भूमि का स्थान महान है। हम इस पर अपने पराक्रम और सौभाग्य का वपन करें और बहु–उपज वाली कृषि करें।[3]

ऋग्वेद के अनुसार कृषि के लिए भूमि को हल से जोतने की प्रथम–शिक्षा अश्विनौ द्वारा दी गई थी।[4] अतः हल का प्रयोग ऋग्वैदिक काल से ही दिखाई देता है।[5] तदनन्तर परिश्रमी आर्यों ने जब एक बार कृषि आरम्भ की तो उसमें निरन्तर उन्नति होती चली गई। अथर्ववेद के अनुसार पृथी–वैन्य प्रथम कृषक थे, जिन्होंने सर्वप्रथम कृषि द्वारा फसल उगाई थी।[6]

कृषि बहु–श्रमसाधित व्यवसाय है जिसके लिए परिश्रम, विवेक और धैर्य अपेक्षित है। वैदिकों में ये सभी गुण थे। कृषि के प्रति उनका आकर्षण दर्शनीय है। वे भूमि को हल से जोतते, जिन्हें बैल खींचते थे। कभी–कभी तो एक ही हल से दो से अधिक चार–छः आठ और बारह तक बैल जोते जाते थे।[7] वेदों में कृषि उपकरण और हल के लिए लाङ्गल[8], वृक[9], सुनासीर[10] आदि संज्ञाओं का प्रयोग मिलता है, जिसकी मूठ काष्ठ निर्मित होती थी।[11] हल का जुआ बैलों की जोड़ी पर रखा जाता और उत्पाद बढ़ाने हेतु खेतों में गोबर का उर्वरक डाला जाता था।[12]

फसल पक जाने पर उसे हँसिया से काटते और गट्ठर बाँध कर घर ले आते थे।[13] कटी हुई फसल खलिहानों में एकत्र की जाती, जहां उसे मण्डित किया जाता था।[14] उपज चलनी और धूप से ओसयी जाती[15],

और तब उसे 'ऊर्दर' नामक माप द्वारा माप कर स्थितियों में संचित कर दिया जाता था।[16] आज भी ग्रामीण–भारत में कृषि एवं अन्न भण्डारण का प्रायः यही ढंग दिखाई देता है।

वेदों में अनेक ऐसे सूक्त हैं जहाँ पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में कृषि से संबंधित प्रार्थनाएँ की गई है–

मधुमान्नों वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।।[17]

वनस्पति हमारे लिए मधुमय हो, सूर्य हमारे लिए मधुमान् हो, भूमियाँ हमारे लिए मधुमती हों, यह कहता हुआ वेद सूचित करता है कि सूर्य और भूमि से वनस्पतियों में मधु उत्पन्न होता है, जिससे वे हमारे लिए लाभदायक होती है।

व्यक्ति सुवर्ण व पशुधन के साथ कृषि की भी तीव्र कामना करता है। वह चाहता है कि खेती करके मुझे बहुत धन–धान्य प्राप्त हो। वह प्रार्थना करता है–

कृषिश्च में वृष्टिश्च में जैत्रं च म औद्भिद्यं च में यज्ञेन कल्पन्ताम्।[18]

वेद में ऐसे अनेक मन्त्र है जिनमें यह निर्देश मिलता है कि राष्ट्रवासियों को कृषि की उन्नति करने में प्रयत्नशील रहना चाहिए, यथा–

रयिं वीरवतीमिषम्[19]

ऋग्वेद में 'अग्नि' से प्रार्थना की गई है कि वह हमें ऐसा अन्न प्रदान करें, जिसे खाकर हमारे पुत्र वीर और दीर्घायु बने।

द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः।[20]

ऋग्वेद से हमें ऐसे कृषि विशेषज्ञों के बारे में जानकारी भी मिलती है, जिन्हें खेती की उपज को चार गुणा बढ़ाने की सिद्धि प्राप्त थी। ये ऋभु नामक विद्वान एक को चार गुणा बनाने में सिद्धहस्त थे। ऋभुओं से कहा गया है–

एक चमसं चतुरः कृणोतन[21]

ये ऋभु अर्थात् सम्राट के क्रियाकुशल विद्वान् लोग भूमि को उपजाऊ बनाने में पूर्णतया समर्थ थे। कहने का भाव यह है कि वे वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा कृषि के पदार्थों के पारस्परिक योग विभागों द्वारा अनेक नये अथवा अधिक परिष्कृत अन्न बनाते रहते थे।

''सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धुन् धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः''[22]

अर्थात् ये ऋभु लोग खेतों को उत्तम बनाकर, नदियाँ तथा नहरें चला देते हैं। इनकी महिमा से रेगिस्तानों में अनाज उत्पन्न होने लगते हैं और जलाशय पानी से भरे रहते हैं। राज्य को ऐसे कुशल शिल्पी रखने चाहिए जो राष्ट्र के खेतों को और अधिक उत्तम बनाते रहे, रेगिस्तानों को भी बसाकर अन्न और जल से युक्त करने के उपाय सोचते रहें।

वैदिक युग के आर्यों का आर्थिक जीवन कृषि पर निर्भर था, अतः उन्होंने 'क्षेत्रपति' नाम से एक ऐसे देवता की भी कल्पना कर ली थी, जिसकी कृपा से उनके खेत फलते–फूलते थे। क्षेत्रपतिदेवता की स्तुति में ऋग्वेद में अनेक मन्त्र विद्यमान हैं, जिनका ऋषि वामदेव है।[23] क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रहित आदि विशेषण ऐसे लोगों के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। जिनको भूमि संबंधी कोई ज्ञान नहीं था वे इन्ही क्षेत्रज्ञों से सलाह लेते थे।

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः।[24]

वेद में भूमि के तीन भेद बताए गए हैं–

1 आर्तना 2 अप्नस्वती 3 उर्वरा[25]

1. आर्तना भूमि– जो पथरीली जलहीन और उपज के योग्य नहीं होती, जिसमें कृषि करने से किसान बहुत दुखी होते हैं। बलवान् पुरूष ही हल चलाकर ऐसी भूमि में अभीप्सित अन्नादि प्राप्त करते हैं।

2. **अप्नस्वती भूमि –** यह भूमि अत्यन्त उपजाऊ होती है। थोड़े परिश्रम से ही इसमें धान्य उत्पन्न किया जा सकता है।

3. उर्वरा – इसमें प्रतिवर्ष हल चलाया जाता है, और यह प्रतिवर्ष धान्य देती है।

भूमि पर जब हल चलता है तब हल के द्वारा एक रेखा बनती जाती है, वहीं जुताई का स्वरूप है। वेद में इस रेखा को सीता कहा गया है। वहाँ पर सीता शब्द किसी स्त्री नाम विशेष तथा जनक पुत्री सीता के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ बल्कि विदीर्ण की हुई भूमि की रेखा के लिए प्रयुक्त हुआ है।[26] वेदों में कृषक को सम्मान देते हुए उसे विद्वान, शिक्षित और कवि कहा गया है–

सीरा युञ्जन्ति कवयों युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया।[27]

निष्कर्ष – भारतवर्ष वैदिक काल से ही कृषि प्रधान रहा है। कृषि करने की विभिन्न–विभिन्न तरीकों की परम्परा वैदिक काल से चली आ रही है। वैदिककाल में कृषि करने वाले कृषकों को बड़े आदर व सम्मान के भाव से देखा जाता था। इन सबसे यह सिद्ध होता है कि वैदिक युग में कृषि को अपनाना आर्यत्व एवं श्रेष्ठत्व की पहचान थी।

संदर्भ–ग्रंथ–सूची :

1. वामन शिवराम आप्टे, शब्दकोष पृ0–299
2. ''अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व''। ऋग्वेद–10/34/7
3. भूमिरावपनं महत्। यजुर्वेद–23/46
4. ऋग्वेद– 1/117/21, 8/22/6
5. ऋग्वेद– 10/101/14
6. अथर्ववेद– 8/10/11, 8/104/11
7. ऋग्वेद– 8/6/48, अथर्ववेद– 6/91/1, तै0 स0 5/2/52
8. ऋग्वेद– 5/57/4
9. ऋग्वेद– 8/22/6
10. यजु– 18/7 (दयानन्द भाष्म)
11. अथर्ववेद– 3/17/3
12. ऋग्वेद– 10/101/3
13. ऋग्वेद– 8/78/10, 10/101/3
14. ऋग्वेद– 10/48/7
15. ऋग्वेद– 10/71/2
16. ऋग्वेद– 10/68/3
17. यजुर्वेद– 13/29
18. यजुर्वेद– 18/9
19. ऋग्वेद– 1/96/11
20. ऋग्वेद– 1/96/8
21. ऋग्वेद– 1/161/2

22. ऋग्वेद– 4/33/7
23. ऋग्वेद– 8/57
24. ऋग्वेद– 10/32/7
25. ऋग्वेद– 1/127/6
26. ईषा लांगलदण्डः स्यान् सीता लांगलनपद्धतिः। अमरकोष 2/19/14
27. अथर्ववेद– 3/77/1